जीवन्धर का राजपद

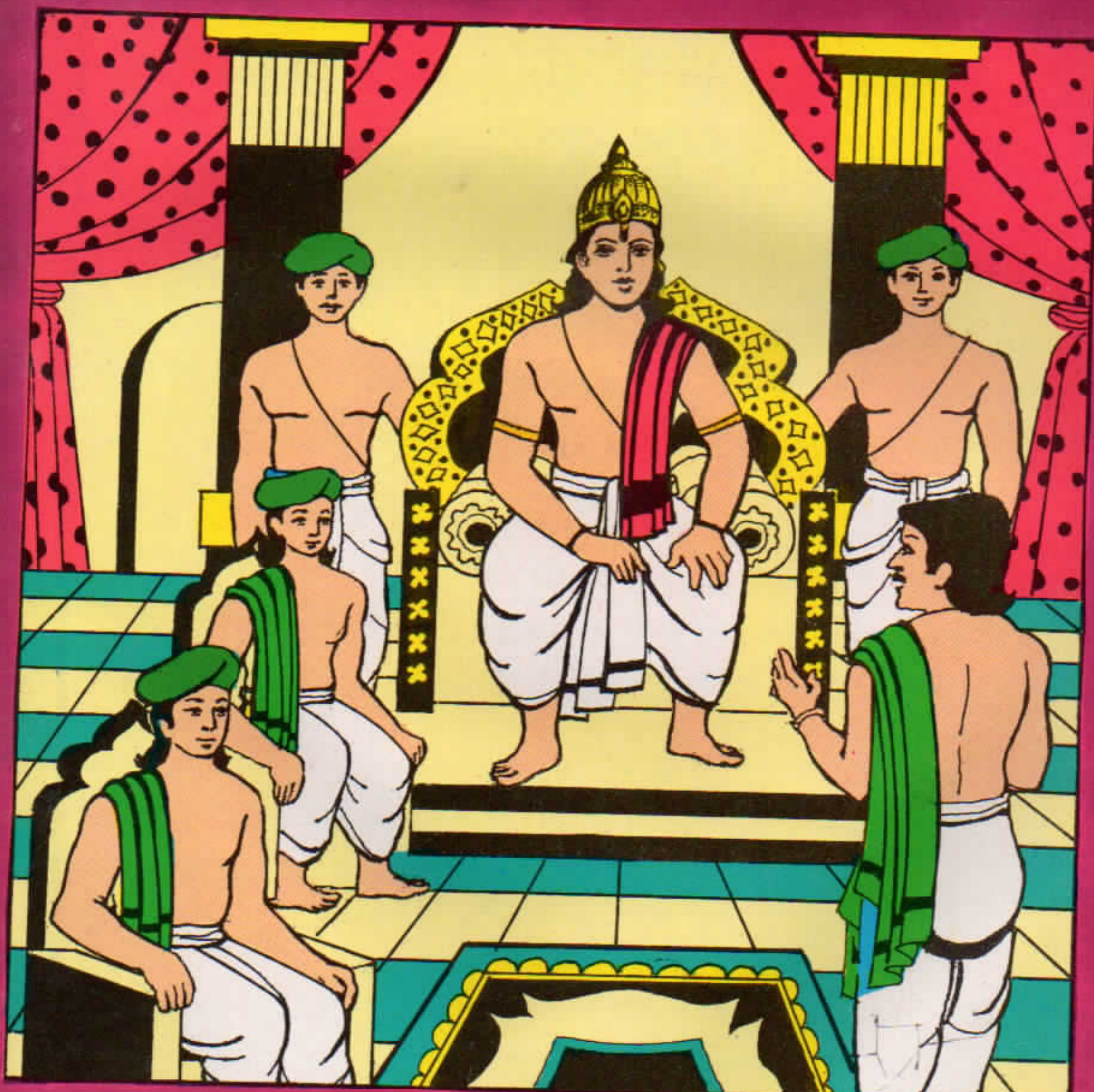

जैन चित्र कथाऐं

सुनो सुनाये सत्य कथाएं

आशीर्वाद

प्रज्ञा श्रमण मुनि श्री अमित सागर जी महाराज

प्रकाशक	:	आचार्य धर्मश्रुत ग्रन्थ माला
कृति	:	**जीवन्धर का राज्य पद**
©	:	सर्वाधिकार सुरक्षित
लेखक	:	ब्र. धर्मचन्द शास्त्री प्रतिष्ठाचार्य
पुष्प नं	:	**40**
मूल्य	:	**20.00**
प्राप्ति स्थान	:	जैन मंदिर गुलाब वाटिका लोनी रोड़ जिला गाजियाबाद (उ.प्र.)
☎	:	**914-600074** **S.T.D. 0575-4600074**

जीवंधर का राज्यपद

किसी समय भरत क्षेत्र में हेमांगद नामक एक प्रदेश था. उसकी राजधानी का नाम राजपुरी था. वहां सत्यंधर नामक राजा का शासन था. उसकी रानी का नाम विजया था. वह अत्यंत सुंदर थी. राजा उसके रुप पर इतना मोहित रहता था कि उसे राज काज की ओर ध्यान देने का अवसर ही न मिलता था.

राजा सत्यंधर, रानी विजया के मोह में इतना लिप्त हो गया कि उसे राज्य शासन एक तरह का बोझ लगने लगा. वह सोचता कि मेरे आनंद में राजकाज व्यर्थ ही बाधा बन रहा हैं. क्यों न यह भार अपने मंत्री काष्ठाअंगार को दे दूं.

आखिर राजा सत्यंधर ने अपने मन का निश्चय, राज दरबार में कहा. राज दरबारी उसका यह विचार सुनकर सन्नाटे में आ गए. फिर उन्होंने राजा सत्यंधर को समझाते हुए कहा-हे राजन्! आपका धर्म है राज शासन को चलाना. इसलिए कामासक्त होकर राज्य की सम्हाल का काम आपको छोड़ना नहीं चाहिए. संसार में जो वस्तु पाने की इच्छा करें, उसे पाने से पहले उसके गुण दोषों पर विचार अवश्य कर लेना चाहिए. इसलिए आपने जो निर्णय लिया हैं, उस पर अच्छी तरह विचार कीजिए.

लेकिन मंत्रियों और दरबारियों के बहुत समझाने के बाद भी राजा सत्यंधर ने अपनी हठ नहीं छोड़ी. नीतिकार कहते हैं कि जब कोई बुराई की ओर जाता है तो उसकी बुद्धि भी वैसी ही हो जाती हैं. इस प्रकार राज्य का काम मंत्री काष्ठाअंगार को सौंपकर राजा सत्यंधर निश्चिंत हो गया

कुछ दिनों बाद महारानी विजया ने तीन स्वप्न देखे. रात्रि के पिछले भाग में देखे इन स्वप्नों में पहला स्वप्न था- एक अशोक वृक्ष जो कि नष्ट हो रहा था. दूसरे स्वप्न में रानी ने मुकुट सहित नया अशोक वृक्ष देखा. तीसरे स्वप्न में आठ मालाएं देखी.

महारानी विजया, सवेरा होने पर इन स्वप्नों का अर्थ जानने के लिए उत्सुक हुईं. उन्होंने स्नान आदि करके महाराज सत्यंधर के कक्ष की ओर प्रस्थान किया. सत्यंधर ने सुबह-सुबह महारानी को आया देखकर थोड़ा आश्चर्य व्यक्त किया. फिर उन्हें पास बिठाकर उनके आने का कारण पूछा.

एक दिन विजया रानी ने रात्रि को तीन स्वप्न देखें ।

महारानी विजया ने रात में देखे तीनों स्वप्न बताकर महाराज से उनका अर्थ पूछा . महाराज ने पहले स्वप्न का अर्थ अशुभ समझकर कुछ नहीं कहा . यह उनकी स्वयं की मृत्यु का सूचक था . फिर उन्होंने कहा- ' महारानी ! मुकुट से सुशोभित नवीन अशोक वृक्ष का अर्थ है- आपके एक तेजस्वी पुत्र होने वाला है . आठ मालाओं का अर्थ है कि उसकी आठ पत्नियां होगी .'

' लेकिन महाराज ! आपने पहले स्वप्न का अर्थ स्पष्ट नहीं किया .' महारानी विजया ने पूछा . तब सत्यंधर ने कहा- ' महारानी ! पहला स्वप्न मेरी मृत्यु का सूचक है .' राजा से ऐसी बात सुनकर रानी विजया मूर्छित हो गयीं . तब राजा सत्यंधर ने जल के छींटे मारकर रानी की मूर्छा दूर की . फिर उन्हें समझाते हुए बोले- हे देवि ! जो व्यक्ति फल फूलों से हरे-भरे वृक्ष की रक्षा करना चाहता हैं , वह उसको जलाता नहीं हैं , बल्कि उसकी रक्षा करता हैं . इसलिए यदि तुम मेरी कुशल चाहती हो तो स्वप्न की बात पर विश्वास करके मेरा अशुभ सोचना उचित नहीं हैं . जहां पर दीपक का प्रकाश होता हैं , वहां अंधकार दूर ही दूर भागता है . इसी प्रकार जो धर्म का पालन करते हैं , उन पर विपत्ति भी नहीं आ सकती . इसलिए धर्म का पालन करो जिससे आई हुई विपत्ति दूर हो .'

सत्यंधर की बात सुनकर रानी विजया का मन शांत हुआ और वह फिर से सुख पूर्वक जीवन जीने लगी . कुछ ही दिनों में विजया रानी गर्भवती हो गई . तब राजा सत्यंधर ने समझ लिया कि उसकी मृत्यु निकट हैं . अब उसे पश्चाताप होने लगा कि मंत्री काष्ठाअंगार को राज्य नहीं देना चाहिए था . उन्हें लगा कि काष्ठाअंगार उनके पुत्र को कभी राजा नहीं बनने देगा . किंतु अब क्या किया जा सकता था .

राजा सत्यंधर ने अपनी होने वाली संतान की रक्षा का उपाय सोचा . उसने एक मयूराकृति वायुयान निर्मित कराया और विजया रानी को उसमें बिठाकर उड़ने का अभ्यास कराने लगा .

उधर काष्ठाअंगार ने सोचा कि राजा सत्यंधर का पराधीन बनकर शासन करने से तो मर जाना अच्छा है . जब तक यह राजा जीवित है , मैं मन चाहा शासन नहीं कर सकूंगा . ऐसा विचार

करके काष्ठाअंगार ने अपने मंत्रियों से कहा कि राजद्रोही देवता नित्य आकर मुझसे कहते हैं कि तुम सत्यंधर के साथ युद्ध करो और उसे मारकर स्वतंत्र राजा बन जाओ.

काष्ठाअंगार की बात सुनकर, राजा सत्यंधर का अनन्य भक्त धर्मदत्त मंत्री चिंतित हो उठा. उसने सोचा कि सत्यंधर के साथ युद्ध करने का विचार करना सभ्यता और धर्म के अनुकूल नहीं और खतरनाक भी है. वह जानता था कि काष्ठाअंगार को कुछ भी समझाने पर वह उसे दंड दे सकता है. फिर भी उसने उसे समझाकर कहा- ' राजा के विषय में जो भी अच्छा या बुरा व्यवहार किया जाता है, वह जनता पर ही किया हुआ समझना चाहिए. इसलिए तुम राजा के बारे में जो बुरा विचार कर रहे हो, वह राजा का ही नहीं, समस्त जनता के विषय में तुम्हारा बुरा विचार हैं. यदि आप राजा के साथ द्रोह करेंगे तो पंच पातक के भाजन बनेंगे. राजा तो देवों से भी बढ़कर होते हैं क्योंकि वह प्रजा और देवताओं दोनों की रक्षा करता हैं. अतः ऐसे राजा के साथ कृतघ्नता प्रकट करना महान अन्याय होगा.

किंतु काष्ठाअंगार ने किसी की बात न सुनी और राजा को मारने के लिए सेना भेज दी. उधर जब द्वारपाल ने राजा को काष्ठाअंगार की सेना आने का समाचार दिया तो वह क्रोधित होकर युद्ध के लिए तैयार हो गया. उसने अपनी रानी विजया को समझाया कि जिस प्रकार दीपक के बुझ जाने पर अंधेरा अपने आप ही आ जाता है, उसी प्रकार पुण्य के नष्ट हो जाने पर दुख अपने आप आ जाता है. इसलिए तुम्हें शोक नहीं करना चाहिए. इसके बाद राजा ने विजया को हवाई जहाज में बिठाकर आकाश में उड़ा दिया. नीतिकार कहते हैं कि भाग्य अटल होता है. जब राजा - रानी के अशुभ कर्म का उदय हुआ तो उन्हें दुखों को अनुभव करना ही पड़ा.

जब हवाई जहाज में रानी उड़ गई तो राजा सत्यंधर तलवार लेकर काष्ठाअंगार की सेना से युद्ध के लिए चल पड़ा. किंतु तभी राजा सत्यंधर को लगा कि युद्ध में व्यर्थ ही जन संहार होगा. इसलिए उन्होंने समस्त परिग्रह छोड़कर आत्मस्वरुप का चिंतन करते हुए सल्लेखना पूर्वक शरीर छोड़ा और स्वर्ग में देव पर्याय प्राप्त की. उनके वियोग से समस्त देश में आंतक छा गया.

उधर राजा ने जो हवाई जहाज उड़ाया था वह जाकर राजपुरी की श्मशान भूमि में गिरा. वहां रानी विजया ने एक पुत्र को जन्म दिया. उसी समय एक देवी धाय का रुप धारण करके पुत्र रक्षा और विजया की सहायता के लिए वहां प्रकट हुई. उसका नाम था चंपकमाला. उसने अपने अवधिज्ञान ने जानकर विजया को समझाया- ' हे देवी ! इस पुत्र के पालन की चिंता न करो. एक कुलीन व्यक्ति इस पुत्र का राजकुमारों की तरह पालन करेगा. तब विजया ने उस पुत्र को राजचिन्ह वाली अंगूठी पहना दी और पास ही छिप गयी.

उसी समय, वहां का नगर सेठ गन्धोत्कट के यहां एक पुत्र जन्मा और उसी दिन उसकी मृत्यु हो गई. वह नगर सेठ उस पुत्र की अंत्येष्टि करने श्मशान भूमि में आया. उसे किसी मुनि ने

अवधिज्ञान से सेठ को बताया थी कि जिस समय तू श्मशान भूमि पर जाएगा, वहां तुझे एक नवजात शिशु पड़ा मिलेगा. तू उसे ले आना और उसका पालन पोषण करना. इसलिए वह नगर सेठ अपने पुत्र की अन्त्येष्टि के बाद उस नवजात शिशु के खोजने लगा. तभी उसे विजया का पुत्र दिखाई दिया. गंधोत्कट मारे खुशी के फूला न समाया. जब वह उसे उठाकर ले जाने लगा तो छिपी हुई विजया ने उसे ' जीव ' कहकर आशीर्वाद दिया. गंधोत्कट ने ' जीव ' शब्द सुनकर उस शिशु का नाम जीवंधर रख दिया.

जीवन्धर का श्मशान में जन्म

सेठ गंधोत्कर द्वारा बालक को ले जाकर अपनी पत्नी को देना।

गन्धोत्कट घर पहुंचा और सेठानी पर बिगड़कर बोला- ' तुमने व्यर्थ ही जीवित पुत्र को मृत कह दिया. यह लो अपना पुत्र.' सेठानी अपने पुत्र को पाकर बहुत प्रसन्न हुई. गंधोत्कट ने पुत्र प्राप्ति की बात को गुप्त ही रखा.

अब उस देवी ने विजया से कहा कि तुम अपने भाई के यहां चली जाओ. किंतु विजया वहां जाने को तैयार न हुई. तब वह देवी विजया को दंडक वन में रहने वाले तपस्वियों के आश्रम में ले गई.

नगर सेठ गंधोत्कट ने पुत्र जन्म के उपलक्ष्य में बड़ा भारी उत्सव किया. मूर्ख राजा काष्ठाअंगार ने समझा कि यह उत्सव उसके राजा बनने की खुशी में हो रहा है. इसलिए उसने सेठ को बहुत सा धन इनाम में दे दिया. इसके बाद बालक जीवंधर का लालन-पालन बड़े ठाट-बाट से होने लगा.

कुछ समय बाद गन्धोत्कट की स्त्री सुनन्दा ने एक ओर पुत्र को जन्म दिया. उसका नाम नन्दाढ्य रखा गया. उसका पालन-पोषण भी जीवंधर के साथ होने लगा. जब जीवंधर पांच वर्ष का हुआ तो उसका यथा विधि विद्यासंस्कार किया गया.

शिक्षा प्राप्त करने हेतु गुरुकुल में आर्यनन्दि जी के पास जाना।

प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद , जीवंधर ने सर्व विद्या विशारद गुरु आर्यनन्दी की पाठशाला में अपूर्व विद्वता प्राप्त की . जीवंधर से भी आर्यनन्दी महाराज भी बहुत प्रसन्न हुए थे . एक दिन आर्यनन्दी महाराज ने जीवंधर से कहा- ' हे जीवंधर , मैं इस समय किसी प्रसिद्ध पुरुष के चरित्र को सुनाता हूं . उसे तुम ध्यान देकर सुनो . विद्याधर लोक में एक लोकापाल नामक राजा न्यायपूर्वक प्रजापालन कर रहा था . एक बार राजा लोकपाल ने अनुभव किया कि यह ऐश्वर्य तो क्षणभंगुर है . अस्तु उसने विरक्त होकर राज्य का भार पुत्र के सुपुर्द कर दिया और दिगम्बर जैन मुनि दीक्षा धारण कर ली .

जब लोकापाल राजा , दिंगबर मुनि होकर तपश्चर्या करने लगा , तब उसको अन्न खाते ही क्षण मात्र में भस्म कर देने वाला भस्मक रोग हो गया . तब लोकपाल राजा ने तप भी छोड़ दिया . अब वह पाखंड वेश धारण कर स्वच्छंद प्रवृत्ति करने लगा .

संयोगवश एक दिन वह साधु भूख से व्याकुल होकर , गन्धोत्कट सेठ के घर आया . उसने अनेक मित्रों के साथ तुम्हें देखा और तुमने भी उसे देखते ही उसकी भूख को ताड़ लिया . आपने रसोइए को आज्ञा दी कि इस साधु को भोजन कराओ . तब उसने साधु को सहर्ष भोजन कराना प्रारंभ किया . उस साधु ने तुम्हारे रसोईघर में बना हुआ सारा भोजन खा लिया , फिर भी उसकी भूख नहीं मिटीं . तब तुमने अपने हाथ से एक ग्रास उसे दिया . वह ग्रास खाते ही उस साधु का वह भस्मक रोग शांत हो गया और उसकी भूख मिट गयी . साधु ने सोचा कि जिसने मुझे इस महारोग से मुक्ति दिलाई , मैं उसे क्या दूं , उसके उपकार का बदला कैसे चुकाऊं . तब उस साधु ने तुम्हें विद्या पढ़ाना निशचित किया और तुम्हें पढ़ा लिखाकर उद्भट विद्वान बनाया . विद्या धन ही ऐसा धन है जिसे व्यय करने पर उसकी वृद्धि होती है . इसे न चोर ले सकता और न कोई बन्धु . विद्या से

मनुष्य को कुलीनता, धन सम्पत्ति, मान्यता और सभ्यता आदि ही नहीं सम्मान भी प्राप्त होता है.'

इस प्रकार अपनी जीवन कहानी और विद्या के लाभ बताकर आचार्य आर्यनन्दी ने जीवंधर को 'गृहस्थ धर्म' का पाठ पढ़ाया. इसके बाद आचार्य आर्यनन्दी ने बताया कि तुम सत्यंधर महाराज के पुत्र हो और काष्ठाअंगार ने तुम्हारे पिता को मार डाला है. यह सुनते ही जीवंधर कुमार क्रोध से भर गया. वह उसी क्षण काष्ठाअंगार से बदला लेने के लिए तैयार हुआ. किंतु आर्यनन्दी ने उसे रोका. फिर भी वह क्रोध के आवेश में रुकने के लिए तैयार न हुआ. अंत में आर्यनन्दी ने कहा- 'हे वत्स ! तुम एक वर्ष तक युद्ध न करो.' यही तुम्हारी गुरुदक्षिणा है.' यह सुनने पर जीवंधर रुकने के लिए विवश हो गया. तब आर्यनन्दी ने समझाया- 'हे पुत्र ! राग, द्वेष, क्रोध आदि के वशीभूत होकर, मनुष्य अपने विवेक को नष्ट कर लेता है. इसलिए क्रोध का संहार आवश्यक है. क्रोध करने से, दूसरे की हानि हो या न हो, पर क्रोध कर्ता के ज्ञान, दर्शनादि का घात तो होता ही हैं.'

इस प्रकार आर्यनन्दी ने जीवंधर को शिक्षा देकर स्वंय मुक्ति प्राप्ति हेतु तप करने के लिए वन को चले गए तथा मुनि दीक्षा ले ली.

कुछ समय बाद राजपुरी नगरी के नन्दगोप ग्वाले की गौएं कुछ भीलों मे जंगल में रोक ली. वह दुखी होकर राज द्वार पर आया और गुहार करने लगा- 'हाय मेरी गौएं कुछ चोरों ने रोक लीं हैं. मैं क्या करुँ ?' राजा काष्ठाअंगार ने तुरंत अपनी सेना भेजी कि वह उन गौओं को छुड़ा लाए. लेकिन उसकी सेना उन भीलों से हार गई. इससे ग्वालों में शोक छा गया. तब नन्द गोप ने सारे नगर में घोषणा करा दी की जो व्यक्ति भीलों की सेना को जीत लेगा और गौएं वापस ले आएगा, उसे सात स्वर्ण-पुतलियां भेंट की जाएंगी साथ ही अपनी सुपुत्री प्रदान करुँगा.

भीलों द्वारा गाँओं का अपहरण के बाद उनसे युद्ध में जीतकर गायो सहित।

जब जीवंधर ने नन्द गोप द्वारा की गयी घोषणा सुनी तो उसकी रक्षा करने के विचार से संकल्प किया कि 'मैं इस कार्य को करुंगा.' इसके बाद जीवंधर वन की ओर गए. जिन भीलों

को काष्ठाअंगार की सेना नहीं हरा सकी थी . उन्हें तेजस्वी वीर जीवन्धर द्वारा बात की बात में हरा दिया गया . और उनके द्वारा रोकी गौएं भी वापस ले आए . तब नन्द गोप की खुशी का ठिकाना न रहा . उसने जीवंधर से कहा कि मैं अपने वचन के अनुसार अपनी पुत्री से तुम्हारा विवाह करना चाहता हूँ . किंतु जीवंधर ने यह प्रस्ताव अस्वीकार कर कहा कि इस कन्या के योग्य मेरा मित्र पद्मास्य है . इस प्रकार पद्मास्य से उसका विवाह करा दिया .

राजपुरी नगरी में श्री दत्त नामक वैश्य रहता था . उसके पास यों तो अपने पूर्वजों द्वारा कमाया हुआ विपुल धन था . फिर भी वह स्वंय अपने हाथों से धन कमाना चाहता था . अस्तु वह नौका पर सवार होकर देशाटन के लिए गया . वहां उसने बहुत सा धन कमाया . फिर उस धन को नौका पर रखकर घर के लिए वापस चला . अभी उसकी नौका समुद्र किनारे आने वाली थी कि अचानक बड़े जोर की वर्षा शुरु हो गयी . धीरे-धीरे उसकी नौका डूबने लगी . नौका के सभी लोग हा-हाकार कर उठे . तब श्री दत्त ने उन्हें समझाया-' हे समझदार लोगों , शोक करने से विपत्ति नष्ट नहीं होती , किंतु उसके लिए निर्भयता की जरुरत होती है और वह निर्भयता तत्व ज्ञानियों के पास ही होती हैं . इसलिए तुमको भी तत्वज्ञान प्राप्त कर निर्भय होना चाहिए .

आखिर नौका टूट गयी . श्री दत्त को तभी नाव में पाल बांधने का एक डंडा दिखाई दिया . वह उसी का सहारा लेकर समुद्र के किनारे आया . अब उसे संतोष हुआ कि चलो प्राण तो बच गए . उसकी सारी धन-संपत्ति समुद्र में डूब गयी थी . अस्तु उसके मन में वैराग्य के विचार आने लगे . उसे यह संसार असार महसूस होने लगा . उसने विचार किया कि जिस प्रकार क्रोध ऐहिक और पारलौकिक दोनों ही सुखों पर पानी फेर देता है , उसी प्रकार यह तृष्णा रुपी अग्नि भी तेरे उभय लोक को नष्ट करने वाली है . यह जानकर भी तू उसी तृष्णा के वशीभूत होकर , पर वस्तुओं पर मोहित हो रहा है-यह सर्वथा अनुचित है . सबसे उत्तम बात यही है कि विषयाभिलाषा का विचार छोड़कर आत्म कल्याण में अपने मन को स्थिर करो .

इसी समय श्री दत्त की भेंट एक अपरिचित मनुष्य से हुई . यह वास्तव में धर नामक विद्याधर था . श्री दत्त ने उससे अपनी सारी करुण कथा कह सुनाई . उस मनुष्य ने बड़े धैर्य के श्री दत्त की कथा सुनी . फिर वह श्री दत्त को किसी बहाने से विजयार्ध पर्वत पर ले गया . वहां उसने श्री दत्त से अपना सारा प्रयोजन बताया . उसने कहा-' भरत क्षेत्र के विजयार्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी में स्थित नगरियों में एक नित्यालोका नामक प्रसिद्ध नगरी है . उस नगरी का राजा गरुड़वेग था और रानी का नाम धारिणी था . उन दोनों की गंधर्वदत्ता नामक एक पुत्री थी . जिस समय यह कन्या पैदा हुई

थी, उस समय ज्योतिषियों ने कहा थी कि राजपुरी नगरी में जो कोई वीणा बजाने में इस पुत्री को हरा देगा, वहीं इसका पति बनेगा. जब वह पुत्री विवाह योग्य हो गयी तो राजा गरुड़वेग ने एक दिन रानी से कहा कि राजपुरी का व्यापारी श्रीदत्त मेरा पुराना मित्र है. वह अवश्य ही मेरे इस कार्य को कर देगा.

तब राजा ने मुझे आज्ञा दी कि मैं आपको उनके पास तक ले आऊं मैं उनका पराधीन नौकर धर नामक विद्याधर हूँ. मैंने ही माया जाल से आपकी नौका डुबाई है, जो कि वास्तव में डूबी नहीं हैं. वह केवल भ्रम है. जब श्री दत्त ने सुना कि उसकी नौका सुरक्षित है तो उसे बहुत प्रसन्नता हुई.

समुद्र में फसी नौका को ठीक करना।

इसके बाद श्री दत्त अपने मित्र राजा गरुड़वेग से मिलने चल पड़ा. जब दोनों मित्र मिले उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई. वास्तव में मित्र के हेतु जो अपने प्राणों को भी निछावर करने को कटिबद्ध रहता हो, वहीं वास्तव में मित्र कहलाने का पात्र हो सकता है. गरुड़वेग ने अपने विश्वस्त मित्र श्री दत्त को सारी बातें बताईं. फिर किसी योग्य वर के साथ अपनी पुत्री को विवाह के लिए उसे सौंप दिया.

श्रीदत्त लौटकर अपने घर आया. फिर उसने गरुड़वेग की पुत्री से उसका परिचय कराकर सारा समाचार कह सुनाया. इसके बाद श्री दत्त ने राजा काष्ठाअंगार की अनुमति लेकर पूरे राज्य में घोषणा करा दीं- ' मेरी सर्वगुण सम्पन्न सुपुत्री को जो वीणा बजाने में परास्त कर देगा. वही इसका पति होगा.'

श्री दत्त के द्वारा कराई घोषणा सुनकर, दूर-दूर के राजा महाराजा, गंधर्वदत्ता को जीतने की चाह से वीणा लेकर आए.

गंधर्वदत्ता को वीणा में पराजित करने के लिए सभा मंडप का आयोजन हुआ. सभी लोग वहां आकर बैठ गये. वीणा वादन की प्रतियोगिता का कार्यक्रम आरंभ हुआ. अनेक नौसिखिए और साधारण योग्यता वाले वीणा वादक राजा, गंधर्वदत्ता से पराजित हो गए. तब जीवंधर अपनी घोषवती वीणा लेकर उपस्थित हुआ. उसने अपने वीणा वादन से गंधर्वदत्ता को क्षण भर में परास्त

कर दिया. उधर गंधर्वदत्ता, जीवंधर को देखकर मन ही मन विचार करने लगी कि यदि मैं जीत जाती तो ऐसे पुण्यात्मा पति का लाभ न होता. इस प्रकार गंधर्वदत्ता ने जीवंधर से पराजय स्वीकार करके, वरमाला, जीवंधर के गले में डाल दी. यह देखकर राजा काष्ठाअंगार मन ही मन जल भुन उठा. वह क्रोध से भर कर बोला-' राज्य की समस्त श्रेष्ठ वस्तुओं पर राजा का ही अधिकार होता है. इसलिए यह स्त्री भी राजा द्वारा ही ग्रहण करने योग्य है. हम क्षत्रिय लोगों के होते हुए एक बनिए का पुत्र इसे ले जाये, यह भला कैसे हो सकता है.' यह सुनकर वहां उपस्थित राजा भी भड़क गए. वे सब काष्ठाअंगार की ओर से युद्ध के लिए तैयार हो गए. लेकिन जिस प्रकार सैकड़ों कौओं को उड़ाने के लिए एक ही पत्थर फेंकना काफी होता है, उसी प्रकार सैकड़ों राजाओं को परास्त करने के लिए एक जीवंधर ही काफी सिद्ध हुआ और वे क्षण मात्र भी न टिक सके.

गंर्धवदत्ता का विवाह जीवन्धर के साथ।

इसके बाद गंधर्वदत्ता के पिता गरुड़वेग की ओर से मित्र श्रीदत्त ने जैन-विवाह विधि के अनुसार दोनों का ब्याह कर दिया.

अब जीवंधर, गंधर्वदत्ता के साथ सुखी जीवन बिताने लगा. जब वसंत ऋतु का आगमन हुआ तो तमाम नगरवासी जल क्रीड़ा करने लगे. जीवंधर भी अपने मित्रों के साथ क्रीड़ा स्थल पर पहुंचा. वहां ब्राह्मणों द्वारा रखी गयी हवन सामग्री को किसी कुत्ते ने जूठा कर दिया था. ब्राह्मणों ने उस कुत्ते को मार-मारकर अधमरा कर दिया था. जब जीवंधर वहां पहुंचा तो उसने उस अधमरे कुत्ते को देखा. अपने ऊपर किसी आपत्ति के आ जाने पर मनुष्य जिस प्रकार दुखी होता है, उसी प्रकार दूसरे पर आई हुई आपत्ति को भी अपनी समान जानकर दुख का अनुभव करना ही दयालुता है. अतः दयालु जीवंधर भी उस कुत्ते को छटपटाते हुए देखकर बहुत दुखी हुए. उन्होंने उस कुत्ते का उपचार करना चाहा, लेकिन तब तक बहुत देर हो चुकी थी. जीवंधर ने बहुत प्रयास किया, पर वह उस कुत्ते को न बचा सके.

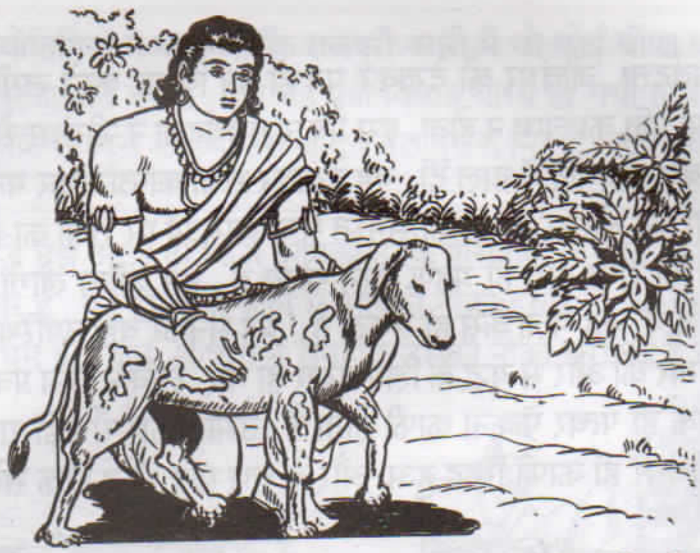

नदी के समीप यज्ञ भूमि में कुत्ते ने हवन सामग्री जूठी की अतः यज्ञ कत्ताओं ने कुत्ते को इतना मारा कि वह मरने के समीप आ गया।
उस समय कुत्ते को णमोकार मंत्र सुनाते हुए जीवन्धर स्वामी

तब जीवंधर ने उस कुत्ते को परभव में मोक्षमार्गी बनाने के लिए, मरते समय णमोकार मंत्र सुनाया. जिस प्रकार रसायन के संयोग से लोहा भी स्वर्ण बन जाता है. उसी प्रकार अंत समय में णमोकार मंत्र के श्रवण से कुत्ता भी अग्रिम पर्याय में यक्षों का अधिपति बन गया. इस प्रकार देव पर्याय रुप धारण कर वह यक्षाधिपति कृतज्ञता वश जीवंधर के पास आया. उसने कहा-' हे जीवंधर, जब तुम पर कोई आपत्ति आवे तब मेरा स्मरण करना. मैं उसी समय आकर तुम्हारी आपत्ति को दूर कर दूंगा.' इतना कहकर वह यक्ष अदृश्य हो गया.

उसी समय नदी के किनारे दो सखियां स्नान के लिए सुगंधित चूर्ण लेकर आयी थीं. उनके नाम थे- सुर मंजरी और गुणमाला. अचानक उन दोनों में बहस छिड़ गयी कि ' मेरा चूर्ण उत्तम है— मेरा चूर्ण उत्तम है.' जब उन दोनों का विवाद बहुत बढ़ गाया. अंत में यह तय किया कि जिसका चूर्ण अच्छा न हो, वह नदी में स्नान न करे. तब दोनों सखियों ने अपनी अपनी दासी चूर्ण परीक्षक कुशल विद्वानों के पास भेजीं. वे दोनों दासियां कई विद्वानों के पास घूमने के बाद जीवंधर के पास आयीं. वे उससे चूर्ण की परीक्षा करने की प्रार्थना करने लगीं. तब विद्वान जीवंधर ने निष्पक्ष बुद्धि से परीक्षा कर दोनों चूर्णों में से गुणमाला के चूर्ण को ही उत्तम कहा. इस पर सुरमंजरी की दासी क्रोध से बोली कि आपने अन्य विद्वानों की ही तरह पक्षपात करके गुणमाला के चूर्ण को श्रेष्ठ कहा. लगता है आप सब विद्वान सहपाठी रहे हैं. तब जीवंधर ने गुणमाला के चन्द्रोदय नामक चूर्ण को हवा में उड़ाया. उसकी सुगंध से भ्रमर मंडराने लगे. इस प्रकार उस चूर्ण की श्रेष्ठता उस दासी के सामने ही सिद्ध कर दी. इसके बाद दोनों दासियां वापस चली गयीं.

सुरसुन्दरी एवं गुणमाला का चूर्ण विवाद

जिन प्राणियों के हृदय में ईर्ष्या भाव जागृत रहता है, उन्हें न्यायानुकूल बात भी प्रिय नहीं लगती. इसी प्रकार जीवंधर का निर्णय भी ईर्ष्यालु सुरमंजरी से सहन न हुआ और वह बहुत उदास हो गयी. वह नदी में स्नान किए बिना ही वहां से चली गयी. उसने मन ही मन हठ किया कि ' मैं जीवंधर के सिवाय अन्य पुरुषों को देखूंगी भी नहीं.'

उधर, अपनी सखी के इस प्रकार रुष्ट होकर चले जाने पर गुणमाला को बहुत दुख हुआ.

उसी समय राजा काष्ठाअंगार का एक मादोन्मत्त हाथी छूटकर घरों और वृक्षों को नष्ट करता हुआ उधर आया. उसे देखते ही लोग भयभीत हो गए और इधर-उधर भागने लगे. कहते हैं इस स्वार्थी संसार में सुख के सब लोग साथी हैं, दुख में कोई काम नहीं आता. इसी प्रकार उस हाथी को देखकर गुणमाला के नौकर-दासी, उसे अकेला छोड़कर भाग गए. लेकिन एक परोपकारी धाय गुणमाला की रक्षा के लिए खड़ी हो गई. इसी समय अपने जीवन की परवाह न कर जीवंधर ने, उसे अपने हाथ के कड़े से ऐसा मुक्का मारा कि वह हाथी भाग गया. गुणमाला ने जीवंधर को देखा और जीवंधर ने गुणमाला को देखा. दोनों एक दूसरे पर मोहित हो गए.

पागल हाथी राजा काष्टांगार का था जीवन्धर स्वामी ने मार मार उसे बस में करते हुए।

गुणमाला अपने घर गई और एक तोते के द्वारा उसने जीवंधर के पास अपना प्रेम संदेश भेजा. उस तोते ने जीवंधर के पास आकर कहा- ' हे महापुरुष ! आप समस्त विषयों में अपनी

और उसकी इच्छाओं को सफल करते हुए चिरकाल तक जिएं.' जीवंधर, तोते द्वारा संदेश पाकर बहुत प्रसन्न हुआ. उसने अपना प्रेम-संदेश भी तोते द्वारा भेज दिया. जीवंधर का प्रेम-संदेश पाकर गुणमाला बहुत प्रसन्न हुई. जब यह बात गुणमाला के माता-पिता को मालूम हुई तो ऐसा सुयोग्य वर जानकर उन्हें भी प्रसन्नता हुई.

उधर जब गुणमाला और जीवंधर के संबंधों की चर्चा फैली तो जीवंधर के कुछ शत्रुओं ने जाकर गन्धोत्कट से जाकर उसके विरोध में कान भरे. किंतु गन्धोत्कट पर इसका कोई असर न हुआ और उसने यही कहा कि यह संबंध तो अच्छा ही हैं.

इसके बाद पिता कुबेरदत्त और माता विनयमाला ने अपनी बेटी गुणमाला का ब्याह, जीवंधर के साथ पूरे विधि-विधान से कर दिया.

गुणमाला का जीवन्धर स्वामी से विवाह।

गुणमाला को मदोन्मत्त हाथी से बचाने के कारण जीवंधर को उससे विशेष प्रेम हो गया था. जीवंधर ने काष्ठाअंगार के जिस अशनिवेग नामक हाथी को अपने कड़े से मारा था, वह हाथी तब से अपने को अपमानित अनुभव कर खाना-पीना छोड़ बैठा था. महावत ने बहुत समझाया, पर वह नहीं माना. आखिर यह समाचार काष्ठाअंगार तक पहुंचा. वह तो पहले से ही जीवंधर से चिढ़ा हुआ था, यह बात सुनकर वह और भी ज्यादा क्रोधित उठा. उसने जीवंधर को पकड़कर लाने के लिए अपनी सेना भेज दी. काष्ठाअंगार की सेना ने जाकर जीवन्धर स्वामी के मकान को घेर लिया. किंतु जिस प्रकार शेर को घेर लेने वाले हिरणों का झुंड उसका कुछ नहीं बिगड़ पाता, उसी प्रकार वह सेना जीवंधर का कुछ भी न बिगाड़ सकी.

जीवन्धर कुमार ने क्रोध में आकर काष्ठाअंगार की सेना को धराशायी करने की तैयारी करने लगे. लेकिन गन्धोत्कट ने उन्हें समझा बुझाकर रोक दिया. फिर गन्धोत्कट ने जीवंधर के हाथों को पीछे से बांधकर उन्हें, काष्ठाअंगार की सेना को सौंप दिया.

जीवंधर ने काष्ठाअंगार के सामने पहुंचकर विनम्रता पूर्वक व्यवहार किया. किंतु नीच काष्ठाअंगार ने उसे मारने की आज्ञा दे दी. यद्यपि जीवंधर चाहते तो उस अवस्था में भी वह काष्ठाअंगार को मार सकते थे, लेकिन उनके गुरु ने एक वर्ष तक उसे न मारने की प्रतिज्ञा करा ली थी, इस कारण वह शांत रहे. एक सुशील शिष्य का धर्म भी यही है कि चाहे अपनी जान पर क्यों न बन आवे, पर वह गुरु आज्ञा का उल्लंघन नहीं करता. अस्तु जीवंधर ने उस समय यक्षाधिपति (पूर्व जन्म जो कुत्ता था) को स्मरण किया. उसी समय वह यक्षाधिपति आया और भरी सभा से जीवंधर स्वामी को उठा ले गया.

कुत्ते का जीव जो यक्षेन्द्र था वह जीवन्धर की सहायता हेतु उपस्थित

जीवंधर को दिए गए मृत्यु दंड का समाचार जब जनता के पास पहुंचा तो वह दुखी हुई. वह सोचने लगी कि निरपराध जीवंधर को मारने की आज्ञा देकर दुष्ट काष्ठाअंगार ने जैसी दुष्टता की है, वैसी दुष्टता इस भूमंडल पर और किसी ने कभी नहीं की.

जीवंधर के माता-पिता और अन्य भाई बंधु भी इस समाचार से दुखी हुए, किंतु उन्होंने धैर्य से काम लिया. उन्हें स्मरण हो आया कि किसी महर्षि ने जीवंधर के भविष्य के बारे में उन्नति सूचक वचन कहे थे. इसलिए धैर्य धारण करना ही उचित था, क्यों कि दिगंबर जैन मुनिराज का वचन कभी झूठा नहीं होता.

जीवंधर स्वामी ने भी काष्ठाअंगार द्वारा मृत्यु दंड सुनाने पर और यक्षाधिपति द्वारा छुड़ाए जाने पर न दुख प्रकट किया न प्रसन्नता. उन्होंने यही विचार किया कि पूर्वकृत शुभाशुभ कर्म का फल प्राणी को अवश्य भोगना पड़ता है. अतएव कर्मों के शुभाशुभ फल में मेरा हर्ष या विषाद करना व्यर्थ ही है.

यक्षेन्द्र ने अपने निवास स्थान चन्द्रोदय पर्वत पर जीवंधर स्वामी को ले जाकर उनका अभिषेक किया. जब पुण्य का उदय होता है तब आपत्तियां सुख का साधन बन जाती हैं. इस समय

जीवंधर के भी पुण्य का उदय था, इस कारण मृत्यु दंड के स्थान पर उनका अभिषेक हुआ. अभिषेक करने के बाद यक्षेन्द्र ने जीवंधर को आदर पूर्वक तीन मंत्र भी प्रदान किए. प्रथम मंत्र के प्रभाव से वह इच्छानुकूल वेश धारण कर सकते थे. दूसरा मंत्र मनमोहक रूप प्रस्तुत करने की शक्ति प्रदान करता था. तीसरा मंत्र विष के प्रभाव को दूर करने में समर्थ था. फिर यक्षेन्द्र ने अपने अवधिज्ञान से जानकर जीवंधर से यह भी कहा कि हे मान्य ! आप एक वर्ष में ही राजा हो जाएंगे और राज्य सुख भोगकर अंत में मोक्ष प्राप्त करेंगे.

जीवंधर की इच्छा हुई कि वह भ्रमण करें और दूसरे देशों तथा नगरों को देखें. तब यक्षेन्द्र ने उनकी इच्छा जानकर उन्हें योग्य मार्ग बताए.

जैसे सिंह गहन जंगल में स्वच्छंद होकर अकेला घूमता रहता है, वैसे ही जीवंधर भी अकेले ही इच्छित स्थानों में घूमने लगे. उन्हें किसी प्रकार का भय न था.

जब वह एक जंगल में पहुंचे तो देखा वहां आग लगी हुई है और हाथियों का समूह विपत्ति में फंसा है. यह देखकर उन्होंने उन हाथियों को बचाने की इच्छा की. संयोगवश उनकी यह इच्छा करते ही आकाश में तत्काल मेघ छा गए और मूसलाधार वर्षा होने लगी. इस तरह जंगल में लगी. आग बुझ गयी और हाथियों की रक्षा हो गयी. जीवंधर स्वामी ने यह देखकर संतोष की सांस ली.

भयंकर जंगल में आग के बीच हाथियों की रक्षा करना।

हाथियों की रक्षा करने के बाद जीवंधर कुमार उस वन में आगे चल दिए. उन्हे रास्ते में जो - जो तीर्थस्थान मिले, उन सबकी उन्होंने वंदना की, पूजा की.

एक तीर्थस्थान में, जिनधर्म पालक एक यक्षिणी (देवी) ने अन्न और वस्त्र आदि देकर धर्मात्मा जीवंधर का बहुत सत्कार किया.. इसके बाद श्रीधर पल्लव देश में स्थित चन्द्राभा नगरी में जा पहुंचे. चन्द्राभा नगरी के राजा धनपति की सुपुत्री पद्मा को उसी दिन सर्प ने काट लिया. इस बात का पता चलते ही जीवंधर स्वामी उसके पास गए और अपने विषनाशक मंत्र के प्रभाव से क्षण मात्र में उन्होंने उसे विष रहित कर दिया. जीवंधर द्वारा बिना किसी स्वार्थ के किया गया यह कार्य सभी के लिए प्रसन्नता का विषय बन गया.

राजकुमारी पद्मा के बड़े लोकपाल ने जीवंधर के द्वारा अपनी बहन के निर्विष होने का समाचार सुनकर उनका बहुत आदर सत्कार किया. साथ ही राजा धनपति ने जीवंधर को सर्वगुण संपन्न पाकर, उसके साथ अपनी कन्या का विवाह कर दिया, साथ ही आधा राज्य भी प्रदान कर दिया. जीवंधर कुमार ने भी राजकुमारी पद्मा को स्वीकार किया और सुखपूर्वक दिन व्यतीत करने लगे.

एक दिन जीवंधर कुमार सासांरिक सुख के इस जाल से मुक्त होने की बात सोचने लगे. बस, उन्होंने किसी से कुछ कहे बिना ही चन्द्राभा नगरी से प्रस्थान कर दिया. इस प्रकार पति के अचानक चले जाने पर पत्नी पद्मा को अत्याधिक वियोग हुआ. उसके बड़े भाई लोकपाल ने जीवंधर की खोज के लिए दूर-दूर देशों में अपने दूत भेजे, पर वे निराश होकर लौट आए.

जीवंधर स्वामी अब जिस मार्ग से जा रहे थे वहां पड़ने वाले अनेक तीर्थों की वह वंदना-पूजा करते जा रहे थे. इस प्रकार चलते-चलते वह पल्लव देश में स्थित चित्रकूट पर्वत के बीच में स्थित एक साधुओं के मठ में जा पहुंचे. मठ में पहुंचकर जब जीवंधर स्वामी ने वहां के साधुओं को पंचाग्नि में तपते देखा तो उन्हें बड़ी दया आई. उन्होंने उन साधुओं से कहा-' हे तपस्वियों ! पंचाग्नि तप में जीवाघात प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता है, तब उसके करने के क्या लाभ ? क्योंकि तप का मूल उद्देश्य तो मुक्ति है ऐसे तप से तो हिंसा होती हैं. तप तो वही श्रेष्ठ है जिसमें अन्य जीवों को जरा भी कष्ट न पहुंचे.

आश्रम में साधुओं को सम्यक शिक्षा देते हुए, जीवन्धर स्वामी।

जीवंधर स्वामी के वचन सुनकर कुछ साधु ने उनके बताए मार्ग को स्वीकार कर लिया. इस प्रकार तपस्वियों को धर्मोपदेश देने के बाद जीवंधर स्वामी उस आश्रम से प्रस्थान कर दक्षिण प्रांत में गए. वहां पर एक विख्यात सहस्रकूट जिनालय के द्वार पर पहुंचकर स्तुति करने लगे. उन्होंने कहा- ' जिस प्रकार अंधकार के कारण मार्ग में पड़ी वे वस्तुएं दिखाई नहीं देती, किंतु दीपक

मिल जाने पर वे बाधाएं दिखने लगती हैं- उसी प्रकार हे भगवन् मेरा हित मार्ग भी मिथ्यात्व प्रवृत्ति से विस्मृत हो रहा है . सम्यग्ज्ञान रुपी दीपक प्राप्त हो , जिससे मेरा हित मार्ग प्रकाशित हो जाये . सोलहवें तीर्थंकर श्री शांतिनाथ भगवान के प्रसाद से मेरे मन की चंचलता हटे , जिससे मुझे सांसारिक दुखों का सामना न करना पड़े .

उस सहस्त्रकूट जिनालय के द्वारा बहुत समय से बंद थे . अनेक बार प्रयत्न किए गए कि वे द्वारा खुल जाएं . सफलता न मिली . किंतु जीवंधर स्वामी की प्रार्थना मात्र से वे द्वार अनायास ही खुल गए . वहां पर सुभद्र नामक सेठ ने , गुणभद्र नामक एक नौकर , यह देखने के लिए नियुक्त कर रखा था कि किस महापुरुष की प्रार्थना पर जिनालय के किवाड़ खुलते हैं . जब जिनालय के किवाड़ खुल गए तो गुणभद्र , जीवंधर स्वामी के सामने आया . उसने कहा- ' हे देव ! यहां क्षेमपुरी नामक राजधानी है और नरपति देव इसका राजा है . उस राजा के सुभद्र नामक सेठ और निर्वन्ति नामक सेठानी है . इन दोनों के ' क्षेमश्री ' नामक सुपुत्री है . क्षेमश्री के जन्ममुहूर्त में आए हुए ज्योतिषियों ने कहा थी कि जिस महापुरुष के आने पर उस सहस्त्रकूट जिनालय के किवाड़ स्वंय जाएंगे वही इसका पति होगा . यही जानने के लिए सेठ ने मुझे यहां नौकर रखा है . मेरा नाम गुणभद्र हैं . '

इसके बाद उसने जीवंधर स्वामी को प्रणाम किया और शीघ्र ही यह शुभ समाचार देने के लिए चला आया . उसने जिनराज की पूजा करते हुए जीवंधर को देखा .

पूजा करने के बाद जीवंधर और सुभद्र का आपस में मिलन हुआ . इसके बाद सुभद्र ने जीवंधर से घर चलने का आग्रह किया . चूंकि कुछ देर तक बातचीत करने के बाद दोनों में मैत्री हो गई थी , इसलिए जीवंधर ने उसका आग्रह स्वीकार कर लिया .

घर पहुंचने पर सुभद्र ने जीवंधर का स्वागत किया . फिर उसने ज्योतिषियों द्वारा बतायी गयी भविष्यवाणी की चर्चा की . साथ ही उसने अपनी कन्या के साथ विवाह करने की प्रार्थना की . जीवंधर ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली . इस प्रकार जीवन्धर कुमार ने सुभद्र सेठ की कन्या क्षेम श्री से शुभमुहूर्त में विवाह कर लिया .

जीवंधर कुमार ने क्षेमश्री से विवाह कर कुछ समय सुखपूर्वक बिताया . फिर क्षेमपुरी नगर से अन्यत्र जाने का विचार किया .

क्षेमश्री के साथ सुख भोगते हुए जीवंधर को जब बहुत दिन बीत गए तो एक दिन क्षेमश्री और उसके माता-पिता को सूचना दिए बिना ही उस क्षेमपुरी नगरी से चले गए. तब उनकी पत्नी क्षेमश्री को बहुत वियोग हुआ. सुभद्र नामक सेठ ने स्वयं वन में जाकर जीवंधर की बहुत खोज की. पर निराशा ही हाथ लगी.

जीवंधर जब क्षेमपुरी से चले थे तो उनके शरीर पर सेठ सुभद्र द्वारा दिए बहुत से आभूषण थे. उन्होंने वे आभूषण किसी धर्मात्मा व्यक्ति को देने के लिए सकंल्प किया. उसी समय एक किसान जीवंधर के पास आया. उस किसान का भाग्य भी अच्छा था, इसीलिए उसके मन में जीवंधर के पास आने की इच्छा हुई.

जीवंधर स्वामी ने उस किसान से पूछा- ' तुम कहां से आए हो, कहां जा रहे हो और तुम्हें किसी बात का दुख तो नहीं हैं ? जब कोई महापुरुष अपने से छोटे व्यक्ति से उसकी कुशलक्षेम पूछता है तो उस व्यक्ति के लिए वह क्षण बड़ा आनंददायी होता है. ठीक यही स्थिति उस किसान की हुई थी. उसने कहा- ' हे पूज्य ! मैं अपने काम के सिलसिले में यहां आया करता हूँ. मैं अच्छी तरह हूँ, सब कुशल मंगल हैं.'

तब जीवंधर स्वामी ने कहा- ' हे कृषक, खेती आदि से जो सुख प्राप्त होता है, वह नश्वर तथा दुख का कारण है. सच्चा सुख तो आत्म-सुख है. आत्मा का वह उत्तम सुख सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चरित्र के पूर्ण होने पर ही होता है. हे कृषक ! जैसे घोड़ा, हाथी के बोझ को धारण नहीं कर सकता, उसी प्रकार इस समय तू भी उन मुनियों के महाव्रतों को धारण करने के लिए समर्थ नहीं है. इसलिए इस समय तू गृहस्थ धर्म को ही स्वीकार कर.

जीवंधर स्वामी का उपदेश पाकर उस किसान ने गृहस्थ धर्म स्वीकार कर लिया. पुण्य का उदय होने पर वह किसान देशव्रती श्रावक हो गया. तब जीवंधर स्वामी ने उसे अपने बहुमूल्य वस्त्राभूषण प्रदान किए. धर्म लाभ के साथ बहुमूल्य आभूषणों को प्राप्त कर वह किसान बहुत प्रसन्न हुआ.

किसान को श्रावक धर्म का उपदेश देते हुए जीवन्धर स्वामी

जीवंधर कुमार वस्त्राभूषण देने के बाद उस किसान को वहीं छोड़ कर आगे चल दिए. चलते-चलते जब वह थक गए तो एक वन में निर्भय होकर बैठ गए. वहां उन्होंने एक अकेली विद्याधरी को देखा और उसकी ओर से मुंह फेर लिया. किंतु वह विद्याधरी, सुंदर और नव जवान जीवंधर को देखकर उन पर आसक्त हो गयी. किंतु जीवंधर उसके प्रति विरक्त हो गए. उन्होंने सोचा कि इस समय इस वन से चले जाना ही उचित हैं. वह ज्यों ही वहां से चलने को हुए कि उस विद्याधरी ने भी अपने को विरक्त बना लिया. फिर भी वह जीवंधर के पास आकर अपनी करुण कहानी उन्हें सुनाने लगी. वह बोली-' हे भाग्यवान जीवंधर, मैं विद्याधर की एक अनाथ कन्या हूँ. मेरे भाई का साला मुझे जबरदस्ती हर लाया था. किन्तु अपनी पत्नी के भय से वह मुझे इस जंगल में छोड़ गया है. हे महापुरुष जीवंधर ! मेरा नाम अनंगतिलका है. आप मेरी रक्षा कीजिए.'

इतने में ही जीवंधर ने सुना कि कोई पुकार रहा है- ' हे प्यारी ! तुम कहां चली गयीं ! तुम्हारे बिना मेरे प्राण निकल रहें हैं.' तभी अचानक वह विद्याधरी किसी बहाने से वहां से क्षण भर में गायब हो गयी. जीवंधर उसका यह छल समझ न पाए. तभी एक विद्याधर जीवंधर के सामने प्रकट हुआ. उसने कहा- ' हे माननीय जीवंधर ! मेरी पतिव्रता धर्मपत्नी प्यासी थी. उसे यहां पर ही बिठा कर मैं पानी लाने के लिए जलाशय को गया था. वहां से वापिस आकर मैं देखता हूँ तो वह यहां नहीं हैं. हे पुरुषोत्तम जीवंधर !उस स्त्री के कारण ही मेरी विद्याधर संबंधी विद्या विलीन हो गयी है. मुझे कर्त्तव्य मार्ग भी दृष्टिगोचर नहीं होता. अस्तु आप मुझे कर्त्तव्य मार्ग बताने की कृपा कीजिए.'

विद्याधारी को पुन: विद्यादान

विद्याधर की बात सुनकर जीवंधर ने उस विद्याधरी की चाल समझ ली. उन्होंने कहा- ' हे विद्याधर ! तू विद्यावान होकर भी अपनी स्त्री के वियोग में दुखी क्यों होता हैं ? विवेकी जन विपत्ति के आने पर भी धैर्य रखते हैं. विशेष लाभ होने पर भी गर्व नहीं करते. स्त्रियां हजारों ढ़ंग बनाना जानती हैं. तुझे स्त्री के विषय में प्रेम, विश्वास या चाह नहीं करनी चाहिए. इससे कोई लाभ

न होगा .' किंतु जीवंधर स्वामी का उपदेश विद्याधर को प्रभावित नहीं कर सका . यह देखकर जीवंधर को उस विद्याधर पर बड़ी दया आयी . इसके बाद वह उस वन से निकल गए .

आगे चलकर वह एक बाग में पहुंचे . वहां एक राजकुमार धनुष-बाण से आम का एक फल गिराने की कोशिश में सफल नहीं हो रहा था . जीवंधर कुमार ने यह दृश्य देखा तो एक ही बल से उन्होंने फल को गिरा दिया . यह देखकर उस राजकुमार को बड़ा आश्चर्य हुआ . वह राजकुमार जीवंधर के पास आकर बोला - ' इस मध्य प्रदेश में हेमाभा नामक नगरी है . उसमें दृढ़मित्र नामक राजा है . उसकी रानी का नाम नलिना है . उस राजा रानी के सुमित्र और धनमित्र आदि अनेक पुत्र हैं . उनमें से एक मैं भी हूँ . हम सब उम्र में तो बड़े हो गए हैं , किंतु विद्याहीन हैं . हमारे पिता हम लोगों की शिक्षा के लिए धनुर्विद्या के जानकार एक विद्वान को खोज रहे हैं . यदि आप अनुचित न समझें तो उनसे मिलने की कृपा कीजिए .

जीवंधर ने सोचा कि यह तो शुभ कर्म हे , इसलिए मना नहीं करना चाहिए . जब वे राजा के सामने पहुंचे तो बिना परिचय के ही राजा ने उनके व्यक्तित्व को परख लिया . उसने जीवंधर कुमार से हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि वह उसके राजकुमारों को विद्या दान दें . जीवंधर ने राजा की प्रार्थना स्वीकार कर ली . इसके बाद जीवंधर ने उन राजकुमारों को निष्कपट भाव से शिक्षा दी . कुछ ही समय में वे राजकुमार साक्षात् गुरु के समान विद्वान हो गए . राजा भी अपने राजकुमारों की विद्वता देखकर बहुत प्रसन्न हुआ .

दृढ़मित्र राजा ने सोचा कि इस महान् उपकारी का मैं क्या प्रत्युपकार करुं ? अंत में उसने निश्चय किया कि मैं अपनी कन्या इसे प्रदान करुंगा . जब यह प्रस्ताव राजा ने जीवंधर के सामने रखा तो उन्होंने इसे स्वीकार कर लिया . इसके बाद जीवंधर कुमार ने राजा दृढ़मित्र की कन्या से विवाह किया और वहां सुखपूर्वक दिन बिताने लगे . किंतु जैसा कि पहले भी हो चुका हैं , जीवंधर ने विवाह के पश्चात् सुख भरे दिन थोड़े ही बिताए कि उन्हें विरक्ति होने लगी .

जीवंधर स्वामी के सालों ने उन पर बहुत प्रेम प्रदर्शित किया , इसलिए वह उस हेमाभा नगरी में बहुत समय तक रहे . दरअसल प्रेमी मित्रों के साथ रहते हुए समय का पता नहीं लगता .

एक दिन जीवंधर स्वामी एकांत में बैठे थे . उस समय एक अपरिचित स्त्री उनके पास मुस्कराती हुई आई . जीवंधर कुमार ने उस स्त्री से इतने समीप आने का अभिप्राय पूछा . उस स्त्री ने कहा- ' मैंने यहां और आयुधशाला में आपको एक ही समय बिना किसी विशेषता के देखा है . किसी अनहोनी बात के होने से सभी को आश्चर्य होता है . इसीलिए उस स्त्री की बात सुनकर स्वंय

जीवंधर को बहुत आश्चर्य हुआ . फिर जीवंधर को ख्याल आया कि कहीं उनका भाई नन्दाढ्य तो यहां नहीं आया ? नन्दाढ्य का विचार आते ही जीवंधर शस्त्रागार में जा पहुंचे . बात सही थी . वहां नन्दाढ्य ही था . तब दोनों भाई इतने दिनों के बाद बड़े प्रेम से मिले . इसके बाद जीवंधर ने पूछा कि तुम यहां कैसे आए ? तब नन्दाढ्य ने कहा- ' हे पूज्यवर जब आप राजपुरी से इधर चले आए थे तो आपके दुख के वियोग से मैंने मरने का संकल्प कर लिया था . किंतु अपनी 'अवलोकनी' नामक विद्या के प्रभाव से , आपके सब समाचार जानने वाली भाभी गंधर्वदत्ता की इस समय क्या हालत होगी ? यह आपने सोचा ? तब आपके शुभ दर्शन की आशा लेकर मैं भाभी गंधर्वदत्ता के पास गया . उन्होंने मेरे कुछ कहे बिना ही मन की बात जान ली . वह बोली- ' हे वत्स ! तुम क्यों खेद करते हो ? तुम्हारे बड़े भाई सर्वथा सुखी और प्रसन्न हैं . ये तो हम लोग ही महान् पापी हैं जो उनके वियोग में असह्य दुख का अनुभर कर रहे हैं . इस समय आपके भाई का पुण्य उदय हुआ है . इसलिए उन्हें किसी प्रकार का दुख नहीं हैं . वे जिस स्थान पर जाते हैं , वहां उनका आदर , मान और पूजन होता हैं . हे देवर जी ! तुम्हारे बड़े भाई सर्वथा सुखीं हैं . फिर भी यदि तुम उनके दर्शन करना चाहते हो तो खेद क्यों करते हो ? मैं अपनी विद्या के बल से उनके पास तुम्हें अभी पहुंचाए देती हूँ . तुम तो पुरुष हो . अपनी इच्छा और बल पौरुष से कहीं भी जा सकते हो . पापिनी तो हम लोग हैं जो अकेली नहीं जा सकतीं . '

इस प्रकार भाभी गंधर्वदत्ता ने मुझे सांत्वना देकर 'स्मरतरंगिणी' नामक शय्या पर , मंत्रों से सुलाकर , एक पत्र के साथ , अपनी विद्या के बल से मुझे क्षण भर में यहां पहुंचा दिया . '

दोनों भाईयों का मिलाप

अपने छोटे भाई नन्दाढ्य के करुणा जनक वचन सुनकर जीवंधर को दुख हुआ . फिर जीवंधर ने गंधर्वदत्ता द्वारा लिखा हुआ पत्र भी पढ़ा . उसमें लिखा था-' हे स्वामिन् !गुणमाला निवेदन करती है कि हमें आपका वियोग असह्य हो रहा हैं , अतः शीघ्र दर्शन दें . यानी गंधर्वदत्ता ने अपना दुख गुणमाला के माध्यम से सूचित किया थी , क्योंकि गंधर्वदत्ता की जानकारी में गुणमाला पर ही उनका अधिक प्रेम था .

पत्र पढ़ने के बाद गंधर्वदत्ता के प्रति जीवंधर स्वामी के मन में जो दुख उभरा उसे उन्होंने व्यक्त नहीं होने दिया.

कुछ समय बाद कुछ ग्वालों ने चोरों द्वारा अपनी गाएं पकड़े जाने पर राजमहल के द्वार पर रोना शुरु किया. जब दृढ़मित्र राजा ने उन ग्वालों की करुण पुकार सुनी तो वह स्वयं भी बहुत विचलित हुआ और चोरों को पकड़कर उन ग्वालों की गौएं लौटाने का सकंल्प उसने लिया. उधर जीवंधर स्वामी ने ग्वालों पर आई विपत्ति का समाचार सुना. वह तत्काल ही उन गायों की रक्षा के लिए चल पड़े. उस वन में गायों के चोर जीवन्धर स्वामी के मित्र थे। वे इस बहाने से जीवंधर स्वामी से मिलना चाहते थे. जब दोनों परस्पर मिले तो राजा दृढ़मित्र को बड़ा आश्चर्य हुआ. फिर उन मित्रों ने जीवंधर स्वामी का बड़ा आदर सत्कार किया. इस सत्कार को देखकर जीवंधर स्वामी को संदेह हुआ कि यह वास्तव में शुद्ध हृदय से किया जा रहा है या इसके पीछे कोई कपट भावना है. जब उन्होंने मित्रों के प्रधान पद्मास्य से इस सत्कार का कारण पूछा तो उन्होंने बताया कि हे स्वामिन् ! उस समय आपके चले आने पर हम लोग सर्वथा मृत तुल्य हो चुके थे. किंतु भविष्य में होने वाले आपके शुभ दर्शन रुपी सौभाग्य की आशा से जीवित रहे. इसके बाद देवी गंधर्वदत्ता ने जब अपनी विद्या के बल से आपका शुभ संदेश सुनाते हुए हमें आश्वासन दिया और आपका पता दिया, तो हम लोग आपके शुभ दर्शन की इच्छा से घोड़े बेचने वालों का वेष बनाकर निकल पड़े.

' हम लोग राजपुरी से रवाना होकर बहुत सा मार्ग तय करते हुए दंडक वन में पहुंचे. वहां थकान मिटाने के लिए प्रसिद्ध तपस्वियों के एक आश्रम में पहुंचे. हम लोग वहां जब घूम रहे थे तो एक स्थान पर हमने एक पूज्य माता को देखा. उस पूज्य माता ने हम लोगों को देखते ही पूछा-' तुम लोग कहां से आए हों ?' तब हमने उत्तर देते हुए कहा- ' हे माता ! राजपुरी नगरी में विद्वानों और वैश्यों में जीवंधर नामक महापुरुष हैं. हम लोग उसी महापुरुषों के सेवक हैं. उसी राजपुरी नगरी में काष्ठाअंगार नामक दुष्ट राजा हैं. उसने क्रोध में आकर एक बार उन्हीं जीवंधर स्वामी को निरपराध होने पर भी मृत्यु दंड... अभी हमारा वाक्य पूरा भी नहीं हुआ था कि वह माता मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ीं. जब हम लोगों ने कहा कि हे माता, शोक न कीजिए, जीवंधर स्वामी जीवित हैं, तब वह बड़ी कठिनाई से होश में आ सकीं. लेकिन अब वह रोने लगीं और फिर उन्होंने आपका चरित्र कह सुनाया. उनसे आपके विषय में सुनकर हमने उसी क्षण जान लिया था कि आपका राज्य आपको निशचित ही वापस मिल जाएगा. इसके बाद हम लोग इधर चले आए.

जीवंधर को अब तक यही विश्वास था कि उनकी माता स्वर्गवासी हो चुकी हैं. उन्हें अपने इस अज्ञान पर बड़ा दुख हुआ. किंतु अब उनका मातृ प्रेम उमड़ पड़ा. वह माता के दर्शनों के लिए उत्सुक हो उठे. उन्होंने अपनी यात्रा का प्रयोजन धर्मपत्नी कनकमाला तथा अन्य लोगों से बताया और फिर हेमाभा नगरी से प्रस्थान किया.

उस दंडक वन में पहुंचकर जीवंधर स्वामी ने अपनी माता को देखा तो वे मातृ स्नेह से विह्वल हो उठे. उधर माता के हृदय में, श्मशान में छोड़े हुए पुत्र का जो वियोग था वह भी दूर हो गया. फिर दोनों में बातें हुई. जब माता को मालूम हुआ कि उसका पुत्र राजपुत्र होकर भी इधर-उधर भटक रहा है तो उन्हें दुख हुआ. वह अपने पुत्र को राज सिंहासन दिलाने पर विचार करने लगीं. उन्होंने कहा- ' हे पुत्र ! तू कभी अपने पिता के राज पद को भी प्राप्त करेगा कि नहीं ? क्योंकि इस समय उसे प्राप्त करने की सामग्री, पर्याप्त धन और सेना तो तुम्हारे पास नहीं हैं ! इसलिए मुझे उसकी प्राप्ति पर संदेह हो रहा हैं.'

माता द्वारा पिता का राज्य पुनः प्राप्त करने की प्रेरणा।

जीवंधर ने कहा- ' हे माता ! आप चिंता न कीजिए. मेरे पिता का पद मुझे अवश्य प्राप्त होगा.' यह सुनकर माता विजया को विश्वास हो गया कि हमारा राज्य एक दिन हमें अवश्य मिल जाएगा. अब जीवंधर स्वामी ने भी राज्य प्राप्ति के विषय में अपनी वृद्ध माता के साथ कर्त्तव्य कार्य का विचार किया. सात ही उन्होंने अपनी माता को वन का दुख भरा जीवन छोड़कर मामा के यहां रहने के लिए भेज दिया.

अब जीवंधर कुमार ने राजपुरी की ओर प्रस्थान किया. वह राजपुरी के पास स्थित एक बाग में ठहर गए. उनके साथ आए मित्र सेवक भी वहीं ठहर गए. जीवंधर कुमार ने राजपुरी में घूमकर अपनी मातृभूमि को बड़े स्नेह से देखा.

जीवंधर कुमार जब एक स्थान से होकर जा रहे थे, वहां महल की छत पर खेल रही एक अपरिचित कन्या ने अपनी गेंद नीचे गिरा दी. तब जीवंधर कुमार ने ऊपर की ओर देखा. वह उस कन्या पर मोहित हो गए. वह उस मकान के छज्जे पर चढ़ गए. वह एक सेठ की कन्या थी. अपनी कन्या के लिए अचानक ही ऐसा सुयोग्य वर पाकर उस सेठ को भी अत्यंत प्रसन्नता हुई. उस सेठ ने अपना परिचय देकर कहा-' महोदय, मेरा नाम सागरदत्त है. मेरी स्त्री का नाम कमला हैं. यह मेरा महल है. मेरी कन्या का नाम विमला हैं. वह विवाह योग्य हो गई हैं. इसके जन्म के समय ज्योतिषियों ने बताया था कि बहुत दिनों से न बिके हुए तुम्हारे बहुमूल्य रत्न जब बिक जाएंगे तो

तुम्हें इसके योग्य वर मिल जाएगा . दरअसल वे रत्न उस पुण्यात्मा के आने से ही बिकेंगे . हे महाभाग्य ! बहुत समय से योग्य खरीददार और पूरी कीमत के न मिलने से जो रत्न अब तक बिना बिके ही पड़े थे , वे आपके आगमन से बिक गए हैं . इसलिए अब मैं अन्य वर को न खोजकर ज्योतिषियों के कथनानुसार अपनी सुपुत्री को ही प्रदान करता हूँ . आप इसे वरण कीजिए .' इस प्रकार जब सागर दत्त ने जीवंधर कुमार से विनय की तो उन्होंने उसकी कन्या को वरण करना स्वीकार कर लिया . इसके बाद सागर दत्त की पुत्री विमला का विवाह जीवधंर कुमार से विधिपूर्वक संपन्न हुआ .

सागर दत्त की कन्या से विवाह।

विमला के साथ जीवंधर कुमार का जीवन सुखपूर्वक बीतने लगा . दोनों एक दूसरे को बहुत प्रेम करते थे . किंतु कुछ समय बाद एक दिन जीवंधर कुमार विमला को समझा बुझाकर वहां से चले आए और अपने मित्रों से आकर मिले .

उनके मित्रों में बुद्धिषेण नामक एक विदूषक भी था . एक दिन उसने कहा कि जिन कन्याओं के साथ , उनकी भाग्यहीनता के कारण दूसरे महापुरुष विवाह नहीं करना चाहते , उनके साथ को कोई भी विवाह कर सकता हैं . किंतु पुरुष मात्र का दर्शन तक न करने वाली सुरमंजरी के साथ विवाह करने पर आप विशेष भाग्यशाली कहलाएंगें .

उस विदूषक के वचन सुनकर जीवंधर ने भी उस मानिनी सुरमंजरी से विवाह करने का निश्चय किया . इसके लिए उन्होंने यक्षेन्द्र द्वारा दिए गए ' कामरुप ' मंत्र का स्मरण किया . उन्होंने वृद्धभेष बनाया और उस नगरी के चारों ओर घूमने लगे . उस रुप में उन्हें कोई नहीं पहचान सका . एक दिन वह सुरमंजरी के घर पहुंचे . सुरमंजरी के द्वार पर पहरा देने वाली स्त्रियों ने पूछा कि आप यहां क्यों आए हैं ? बूढ़े ने उत्तर दिया कि मैं यहां ' कुमारी तीर्थ ' को प्राप्त करने आया

हूँ. वे स्त्रियां इस शब्द का अर्थ न समझ सकीं. वे बूढ़े पर हंसने लगीं कि इस नाम का तो कोई तीर्थ हैं ही नहीं. उन्होंने बूढ़े को मूर्ख समझकर महल के अंदर जाने की आज्ञा दे दीं.

सुरमंजरी यद्यपि पुरुष मात्र को देखती भी नहीं थी, तो भी उसने अपने मकान में उस बुड्ढे के आने पर जरा भी क्रोध नहीं किया, बल्कि उसका आदर किया. सुरमंजरी ने उस बूढ़े को भूखा जानकर भोजन कराया. भोजन करने के बाद वह बूढ़ा अपनी थकावट दूर करने के लिए शैया पर सो गया. फिर जब वह सोकर उठा तो श्रोताओं को मुग्ध कर देने वाला गायन उसने सुनाया. सुरमंजरी ने वृद्ध में गायन कला की निपुणता परख ली. वह समझ गयीं कि यह अवश्य ही कोई विशेष-ज्ञानी पुरुष हैं. तब उसने मन ही मन सोचा कि क्यों न इस महापुरुष के अपनी अभीष्ट सिद्धि के विषय में पूछा जाय ! उसने वृद्ध से पूछा कि क्या आप गायन विद्या के अलावा अन्य विद्याओं की जानकारी भी रखते हैं ? तो वृद्ध ने कहा कि हां, मैं सभी विषयों का यथोचित ज्ञाता हूँ.

सुरमंजरी ने पूछा कि मेरे इच्छित वर की प्राप्ति कब और कहां तथा किस प्रकार होगी. उस बूढ़े ने कहा कि कामदेव की उपासना करने से तुम्हारा मनोरथ सिद्ध होगा. यह सुनकर सुरमंजरी को विश्वास हो गया कि उसका मनोरथ शीघ्र ही पूर्ण होने वाला है. तब वह बूढ़ा सुरमंजरी को कामदेव के मन्दिर में ले गया. वहां पहुंचकर सुरमंजरी ने प्रार्थना की -' हे देव ! आपके प्रसाद से मुझे जीवंधर पति की प्राप्ति हों.'

कामदेव के मंन्दिर में प्रार्थना करती हुई सुरमंजरी

उस समय विदूषक बुद्धिषेण पहले से ही जाकर कामदेव के मन्दिर में छिप गया था. जब सुरमंजरी ने प्रार्थना की तो छिपे हुए विदूषक ने उत्तर में कहा-' तुझे वर प्राप्त हो चुका है. यह जो व्यक्ति तेरे साथ है- वही जीवंधर है.' यह सुनने पर जीवंधर ने अपना वेष बदल लिया. सुरमंजरी ने जीवंधर को पहचान लिया और अपने स्वामी के सामने सिर झुकाकर खड़ी हो गई. जीवंधर ने भी उसके प्रति अपना प्रेमभाव प्रदर्शित किया.

इसके बाद सुरमंजरी के पिता कुबेरदत्त ने विधि-पूर्वक सुरमंजरी का विवाह जीवंधर कुमार के साथ कर दिया.

जीवंधर स्वामी ने कुछ समय सुरमंजरी के साथ बिताया और फिर उसे समझा बुझाकर अपने मित्रों के पास चले आए. इसके बाद जीवंधर सुनन्दा और गन्धोत्कट के पास आ गए क्योंकि वे भी तो माता - पिता के समान थे . माता- पिता से मिलने के बाद जीवंधर ने गन्धर्वदत्ता और गुणमाला से भेंट की और उन्हें सन्तुष्ट किया. फिर गन्धोत्कट से सलाह करके, अपना राज्य वापस लेने की योजना बनाने के लिए वह राजपुरी नगरी से चल दिए. अब वे विदेह देश की धरणीतिलका नगरी में पहुंचे . यहां जीवंधर के मामा राजा गोविन्दराज का शासन था . उन्होंने अपने भांजे का बहुत आदर सत्कार किया.

राजा गोविन्दराज तो पहले से ही राज्य वापस कराने की तैयारी कर रहे थे . अब जीवंधर के आ जाने से वे और भी कमर कसकर तैयार हो गए. अब उन्होंने काष्ठाअंगार पर आक्रमण करने की योजना पर गंभीरता से विचार किया.

इसी समय काष्ठाअंगार को भी भनक मिल गयी कि राजा गोविन्दराज अपने बहनोई की मृत्यु का बदला लेने और राज्य जीतने के लिए आक्रमण करने वाले हैं. तब उसने राजा गोविन्दराज को एक संदेश भेजा . इसे मंत्रियों ने पढ़कर राजा गोविन्दराज को सुनाया . संदेश में काष्ठाअंगार ने लिखा था-' महाराज सत्यंधर की मृत्यु एक मदोन्मत्त हाथी के द्वारा हुई थी , किन्तु अशुभ कर्म के उदय से मैं ही उस अपयश का भागी हुआ हूँ. तो भी समझदार राजा इस बात को मिथ्या मानते हैं. यदि आप भी इस बात को मिथ्या मानकर यहां आकर मुझसे मिलने की कृपा करें तो मैं बिल्कुल निःशल्य हो जाऊंगा.'

संदेश सुनने के बाद गोविन्दराज ने मंत्रियों से कहा कि नीच काष्ठाअंगार हम लोगों को जाल में फंसाना चाहता है . इसलिए हम लोग भी इसी बहाने उसकी चालाकी का मजा चखाने चलें. ऐसा विचार कर गोविन्दराज ने राज्य में ढिंढोरा पिटवा दिया कि काष्ठाअंगार से हमारी मित्रता हो गई हैं. यह समाचार काष्ठाअंगार के पास भी पहुंच गया. इसके बाद राजा गोविन्दराज, जीवंधर कुमार को लेकर राजपुरी के लिए चल दिए. वहां पहुंचकर नगरी के बाहर अपनी सेना ठहरा दी. काष्ठाअंगार ने गोविन्दराज को और गोविन्दराज ने काष्ठाअंगार को भेंट भेजकर आपस में मैत्री संबंध को स्थायी बनाने की सूचना दी.

गोविन्दराज ने अब देश-देशान्तरों में घोषणा करा दी कि जो व्यक्ति चंद्रक यंत्र का भेदन करेगा उसी से मैं अपनी कन्या लक्ष्मणा का विवाह करुंगा. यह घोषणा सुनकर अनेक धनुर्धारी राजा वहां आए. एक विशाल मंडप के नीचे यह आयोजन किया गया था. यंत्र पर स्थित तीन सूकरों का भेदन करने की कोशिश सभी राजा करने लगे . किंतु इस कार्य में कोई सफलता न पा सका. तब

जीवंधर ने अलातचक्र चढ़ाकर सहज ही उसका भेदन कर दिया. उस सुअवसर पर गोविन्दराज ने अन्य राजाओं के समक्ष जीवंधर कुमार का परिचय देकर कहा कि ये सत्यंधर महाराज के सुपुत्र और मेरे भानजे जीवंधर हैं. तब राजाओं ने कहा कि इनके प्रयास को देखकर हमने भी ऐसा ही अनुमान लगाया था.

जब काष्ठाअंगार ने जीवंधर का परिचय सुना तो वह विचार करने लगा कि यदि सचमुच ही यह सत्यंधर महाराज का पुत्र है, तब तो हमें अपने को मरा ही समझना चाहिए. जिस व्यक्ति में चंद्रक यंत्र भेदने की शक्ति है, ऐसे शूरवीर में राज्य संचालन की योग्यता होना सहज ही है. इसलिए उसके होते हुए हमारा राज्य करना तो असंभव है. मेरा जीवित रहना भी असंभव हैं. मैंने व्यर्थ ही इसके मामा को निमंत्रण देकर यहां बुलाया. मैंने स्वयं अपने पैर में कुल्हाड़ी मार ली है. इधर काष्ठाअंगार चिंतित था, उधर जीवंधर के मित्र उसे चिढ़ाकर जले पर नमक छिड़क रहे थे. इससे काष्ठाअंगार का क्रोध भड़क उठा और उसने बिनाविचार किए जीवंधर से युद्ध करने का निश्चय किया. इस कारण कुछ राजा काष्ठाअंगार की ओर हो गए और कुछ जीवंधर की ओर. युद्ध शुरु हुआ और बलवान् जीवंधर ने काष्ठाअंगार को यमलोक पहुंचा दिया. तब जीवंधर ने युद्ध रोक दिया. तब राजा गोविन्दराज ने आगे बढ़कर जीवंधर का अभिनन्दन किया. वह बोले- 'हे भगिनीसुत ! आज आपकी विजय से मेरी बहिन विजया तो वीर माता हुई और पुत्री वीर भार्या हुई.' सभा मंडप में बैठे राजाओं ने अब जीवंधर की अधीनता स्वीकार कर ली.

जीवन्धर स्वामी द्वारा काष्टांगार को मारना।

इसके बाद जीवंधर कुमार राज्याभिषेक के लिए जिन मंदिर गए. फिर अभिषेक मंडप में जीवंधर को बिठाकर गोविन्दराज, यक्षेन्द्र आदि ने विधि पूर्वक राज्याभिषेक किया.

इसके बाद जीवंधर राजमहल में गए और कुल परंपरा अनुसार, राजसिंहासन पर बैठे. जब लोगों को जीवंधर कुमार की पूरी जीवन कथा ज्ञात हुई तो बड़ा आश्चर्य हुआ. लोगों ने कहा

कि कर्म की विशिष्टता से रंक भी राजा बन जाता हैं . जीवंधर जैसे योग्य शासक को पाकर जनता बहुत प्रसन्न हुई .

राज्य प्राप्ति के बाद महाराज जीवंधर ने अपने छोटे भाई नन्दाढ्य को युवराज पद दिया. गन्धोत्कट को राज पितृ पद और विजया तथा सुनन्दा को राजमाता के पद दिए . फिर प्रजा में सुख-शान्ति लाने के लिए समस्त कर समाप्त कर दिए.

इसके बाद जीवंधर महाराज ने अपनी पद्मास्य आदि पत्नियों को भी बुलवा लिया . वे सब वहां आकर अत्यन्त प्रसन्न हुईं . उनका सारा वियोग समाप्त हो गया . जीवंधर ने गंधर्वदत्ता को पटरानी बनाया और इस प्रकार सुखपूर्वक राज्य करने लगे .

जीवन्धर का राज्यपद

जब महाराज जीवंधर सुखपूर्वक और भलीभांति शासन करने लगे तब उनकी माता विजया और सुनन्दा को वैराग्य उत्पन्न हुआ . उन्होंने घर छोड़ दिया और पद्मा नामक आर्यिका से दीक्षा ले ली .

इस प्रकार राजा जीवंधर ने तीस वर्ष तक शासन किया . एक दिन वसंत ऋतु में जीवंधर महाराज ने अपनी आठों रानियों के साथ जल क्रीड़ा का महान् उत्सव मनाया . जब वह जलक्रीड़ा से थक गए तो एक लता भवन में जाकर बंदरों की सुंदर चेष्टाओं को देखने लगे . वहां उन्होंने देखा कि एक बंदर , अपनी बंदरी को छोड़कर दूसरी बंदरी के साथ किलोल कर रहा है . यह देखकर पहली बंदरी उस बंदर से नाराज हो गई . तब वह बंदर उसे मनाने आया , किंतु वह न मानी . तब वह बंदर श्वास रोक कर मरे हुए बंदर के समान लेट गया . उसकी इस दशा पर उस बंदरी को बहुत दुख हुआ . वह उसके पास आकर उसको प्यार करने लगी . तब वह बंदर अपना नाटक छोड़कर उठ बैठा . फिर उसने कटहल का एक फल तोड़कर उस बंदरी को दिया . किंतु तभी माली ने डंडा दिखाकर उस बंदरी से वह फल छीन लिया . यह घटना देख कर महाराज जीवंधर को वैराग्य उत्पन्न

हो गया. उन्होंने विचार किया कि जिस प्रकार इस बंदर ने कटहल के फल को तोड़कर बंदरी को दिया, परंतु माली ने शीघ्र ही उसे छीन लिया, उसी प्रकार काष्ठाअंगार ने भी मेरे पिता से यह राज्य प्राप्त किया था. परन्तु मैंने इस योग्य बनकर काष्ठाअंगार को मारकर उससे वंश परंपरागत अपना राज्य वापस प्राप्त कर लिया है. इसलिए मैं इस माली के समान हूँ और बंदर काष्ठाअंगार के समान है और राज्य इस फल के समान हैं. अतः मुझे ही इस राज्य को छोड़ देना चाहिए. इस संसार में जितने प्राणी उत्पन्न होते हैं, वे सब स्वल्प समय तक रहकर अवश्य ही नष्ट हो जाते हैं. अस्तु बुद्धिमान प्राणी का कर्त्तव्य है कि जगत की समस्त वस्तुओं को नश्वर समझकर मोक्ष प्राप्ति की चेष्टा करे.

जीवन्धर स्वामी ने जैनेश्वरी दीक्षा ली।

इस प्रकार बारह भावनाओं का चिंतन कर महाराज जीवंधर जिन मंदिर में गए. उन्हें वैराग्य उत्पन्न हो चुका था और राज्यादि समस्त पदार्थ उन्हे तुच्छ लगने लगे थे. जिनालय में आकर उन्होंने भगवान जिनेन्द्र की पूजा की. फिर वहीं पर किसी चारण ऋद्धि धारक मुनिराज से धर्म श्रवण किया. फिर जीवंधर ने अपने पूर्वभव का वृत्तांत पूछा.

चारण मुनिराज ने कहा-' हे राजा जीवंधर ! तुम पूर्व जन्म में घातकी खंड द्वीप के भूमि तिलक नगर में पवनवेग राजा के यशोधर नामक कुमार थे. बाल्यावस्था में तुम किसी हंस के बच्चे को क्रीड़ा हेतु पकड़कर ले आए. उस समय तुम्हारे पिता ने तुम्हें अहिंसा धर्म का स्वरुप समझाया. तब तुम्हें अपने उस कार्य पर बड़ा पछतावा हुआ. उस समय तुमने अपनी आठ स्त्रियों के साथ मुनि दीक्षा ग्रहण कर ली थी. दीक्षा लेने के बाद तुमने घोर तप किया था जिसके प्रभाव से आप वैमानिक देव हुए और फिर उसके बाद उन आठ स्त्रियों के साथ यहां पर उत्पन्न हुए. चूंकि तुमने उस हंस के बच्चे को उसके माता-पिता से वियोग कराया था, इस कारण तुम्हें भी माता-पिता का वियोग भोगना पड़ा.'

माली द्वारा बन्दरों से फल छीनते हुए देख कर वैराग्य

मुनिराज के ये वचन सुनकर जीवंधर महाराज भी राज्य से विरक्त हो, मुनिराज को नमस्कार कर अपने नगर को चले गए.

राजमहल में आकर जीवंधर महाराज ने गंधर्वदत्ता के पुत्र सत्यंधर को राज्य सौंप दिया और स्वंय आठों रानियों के साथ श्री महावीर स्वामी के समवसरण में जा पहुंचें. वहां उन्होंने श्री महावीर स्वामी की पूजा कर स्तुति की-

' हे भगवन् जैसे समुद्र में डूबता हुआ कोई व्यक्ति, कर्मोदय से किसी नौका को प्राप्त कर ले, किंतु यदि खेवटिया न मिले, तो पार नहीं हो पाता, उसी प्रकार मैं भी संसार रुपी समुद्र में डूब रहा था, परंतु अब इससे पार होने के लिए मुझे रत्नत्रय रुपी नौका तो प्राप्त हो चुकी हैं, परंतु चतुर खेवटिया के बिना कैसे पार होऊं ! किंतु आप संसार सागर से पार लगाइए.'

इस स्तुति के बाद जीवंधर महाराज ने श्री महावीर स्वामी की अनुमति पाकर दीक्षानायक गणधर देव को नमस्कार किया. फिर दीक्षा ग्रहण करके जीवंधर स्वामी ने श्री महावीर स्वामी के निकट अष्ट कर्म नाशक घोर तपश्चरण किया. तपश्चरण के प्रभाव से उन्होंने आठ कर्मों को नाश किया.

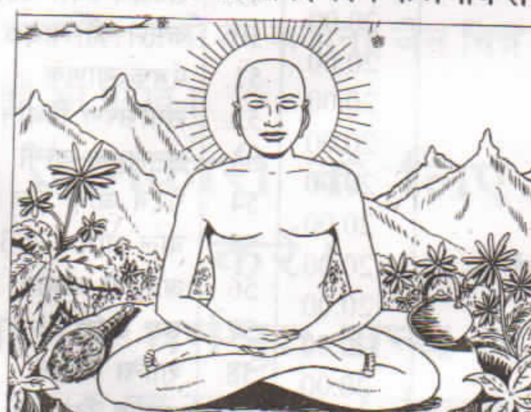

तपश्चरण करते हुए जीवन्धर स्वामी।

इसके बाद जीवंधर स्वामी ने अष्टकर्म का नाश कर अविनश्वर मोक्ष पद प्राप्त किया.

आचार्य धर्मश्रुत ग्रन्थमाला से प्रकाशित साहित्य

आपके परिवार के लिए अति ही उपयोगी साहित्य एवं जैन चित्र कथा

क्र.	ग्रन्थ का नाम	मूल्य	क्र०	ग्रन्थ का नाम	मूल्य
1.	तीन दिन में	20.00	33.	मंत्र महाविज्ञान	60.00
2.	भाग्य की परीक्षा	20.00	34.	ज्योतिष विज्ञान	60.00
3.	आटे का मुर्गा	20.00	35.	कर विज्ञान	30.00
4.	जो करों सो भरे	20.00	36.	साधु परिचय	50.00
5.	कवि रत्नाकर	20.00	37	वरांग चरित्र	50.00
6.	चमत्कार	20.00	38	बोलती माटी	250.00
7.	प्रद्युमन हरण	20.00	39	आखन देखी आत्मा	60.00
8.	सत्यघोस	20.00	40.	जैन ज्योतिष महाविज्ञान	160.00
9.	सात कोड़ियों में	20.00	41	भक्तामर सचित्र हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती	750.00
10.	टीले बाबा कीं	20.00	42.	अभय कुमार	20.00
11.	चन्दनवाला	20.00	43.	भजन रत्नाकर	35.00
12.	ताली एक हाथ से बजती रही	20.00	44.	रत्नाकर की लहरें	250.00
13.	सिकन्दर और कल्याण मुनि	20.00	45.	दर्शन विधि	5.00
14.	चारित्र चक्रवर्ति	20.00	46.	जिन पूजा	5.00
15.	रुप जों बदलता नहीं जाता	20.00	47.	विमल भक्ति	10.00
16.	राजुल–हिन्दी–अंग्रेजी	20.00	48.	आचार्य धर्मसागर पूजाञ्जलि	31.00
17.	स्वर्ग की सीढ़ी	20.00	49.	सज्जन चित्त बल्लभ	10.00
18.	मुनि रक्षा	20.00	50.	कमल श्री नाटक	10.00
19.	मुक्ति का राही	20.00	51.	पंचकल्याणक	20.00
20.	महादानी भामाशाह	20.00	52.	समोसरण विधान	35.00
21.	प्रतिशोध	20.00	53.	अनासक्त योगी	30.00
22	अभय कुमार	20.00	54.	गेटवे ऑफ जैन धर्म	30.00
23.	चेलना की विजय	20.00	55.	बाल भाग 1-2-3-4-5	25.00
24.	पद्मावती देवी	20.00	56.	अनोखी कथाऐं 1 से 10 तक	20.00
25.	गाये जा गीत अपन के	20.00	57.	छह ढाला	10.00
26.	बाहुबली	20.00	58.	शान्ति विधान	25.00
27.	पारसनाथ	20.00	59.	नवग्रह विधान	20.00
28.	भावना का फल	20.00	60.	वास्तु विधान	20.00
29.	भगवान राम	25.00	61.	मृत्युंजय विधान	20.00
30.	आओ बच्चों गाये गीत	20.00	62.	दश लक्षण विधान	20.00
31.	साधना और सिद्धि	70.00			
32.	ज्ञान विज्ञान	30.00			

प्राप्ति स्थान :– जैन मन्दिर गुलाब वाटिका लोनी रोड, दिल्ली फोन :– 0575- 4600074

जैनाचार्यों द्वारा लिखित सत्य कथाओं पर आधारित

जैन चित्र कथा

आठ वर्ष से ८० वर्ष तक के बालकों के लिए

ज्ञान वर्धक, धर्म, संस्कृति एवं इतिहास की जानकारी देने वाली स्वस्थ, सुन्दर, सुरुचिवर्धक, मनोरंजन से परिपूर्ण आगम कथाओं पर आधारित जैन साहित्य प्रकाशन में एक नये युग का प्रारम्भ करने बाली एक मात्र पत्रिका

जैन चित्र कथा

ज्ञान का विकाश करने वाली ज्ञानवर्धक, शिक्षाप्रद और चरित्र निर्माणकारी सरल एवं लोकप्रिय सचित्र कथा जो बालक वृद्ध आदि सभी के लिए उपयोगी अनमोल रत्नों का खजाना, जैन चित्र कथा को आप स्वयं पढे तथा दूसरों को भी पढ़ावे।

विशेष जानकारी के लिए सम्पर्क करें।

आचार्य धर्मश्रुत ग्रन्थ माला

संचालक एवं सम्पादक—धर्मचंद शास्त्री

श्री दिगम्बर जैन मंदिर, गुलाब वाटिका लोनी रोड, जि० गाजियाबाद

फोन 05762-66074

आप से कुछ कहूँ

जैन आगम साहित्य प्रथमानुयोग में, संसार की श्रेष्ठ कहानियाँ का अक्षय भंडार भरा है। चारित्रता, नीति, उपदेश, वैराग्य, बुद्धिचातुर्य, वीरता, साहस, विनयगुण, धैर्य, मैत्री, सरलता, क्षमाशीलता, व्रत उपवास तपस्या आदि विषयों पर लिखी गई हजारों सुन्दर शिक्षाप्रद रोचक कहानियों में से चुन चुन कर सरल भाषा शैली में भावपूर्ण रंगीन चित्रों के माध्यम से प्रस्तुत करने का सर्व प्रथम प्रयास हमने किया था जो काफी प्रगृति पर है।

जैन चित्र कथाओं के माध्यम से आपका मनोरंजन तो होगा ही साथ ही इतिहास, संस्कृति, धर्म, दर्शन और जीवन मूल्यों से आपका सीधा सम्पर्क होगा।

निवेदक

प्रकाशक आचार्य धर्मश्रुत ग्रन्थमाला

जैन चित्र कथा

आप पढ़े तथा दूसरों को पढ़ाये

जैनाचार्यों द्वारा लिखित सत्य कथाओं पर आधारित

जैन चित्र कथा

आठ वर्ष से ८० वर्ष तक के बालकों के लिए

ज्ञान वर्धक, धर्म, संस्कृति एवं इतिहास की जानकारी देने वाली स्वस्थ, सुन्दर, सुरुचिवर्धक, मनोरंजन से परिपूर्ण आगम कथाओं पर आधारित जैन साहित्य प्रकाशन में एक नये युग का प्रारम्भ करने बाली एक मात्र पत्रिका

जैन चित्र कथा

ज्ञान का विकाश करने वाली ज्ञानवर्धक, शिक्षाप्रद और चरित्र निर्माणकारी सरल एवं लोकप्रिय सचित्र कथा जो बालक वृद्ध आदि सभी के लिए उपयोगी अनमोल रत्नों का खजाना, जैन चित्र कथा को आप स्वयं पढे तथा दूसरों को भी पढ़ावे ।

विशेष जानकारी के लिए सम्पर्क करें।

आचार्य धर्मश्रुत ग्रन्थ माला

संचालक एवं सम्पादक—धर्मचंद शास्त्री

श्री दिगम्बर जैन मंदिर, गुलाब वाटिका लोनी रोड, जि० गाजियाबाद

श्री विनोद कुमार जैन

विनोद कुमार सराफ

1159\8 कूचा महाजनी
चाँदनी चौक दिल्ली–6
P.h 2940077

श्रीमति वीना जैन

J.P. EXPORTS

WHOLESALE CHEMIST & DRUGGIST

17/2, Khajoor Building, Bhagirath palace, Delhi-6

Tel. : 2961808, 2968716

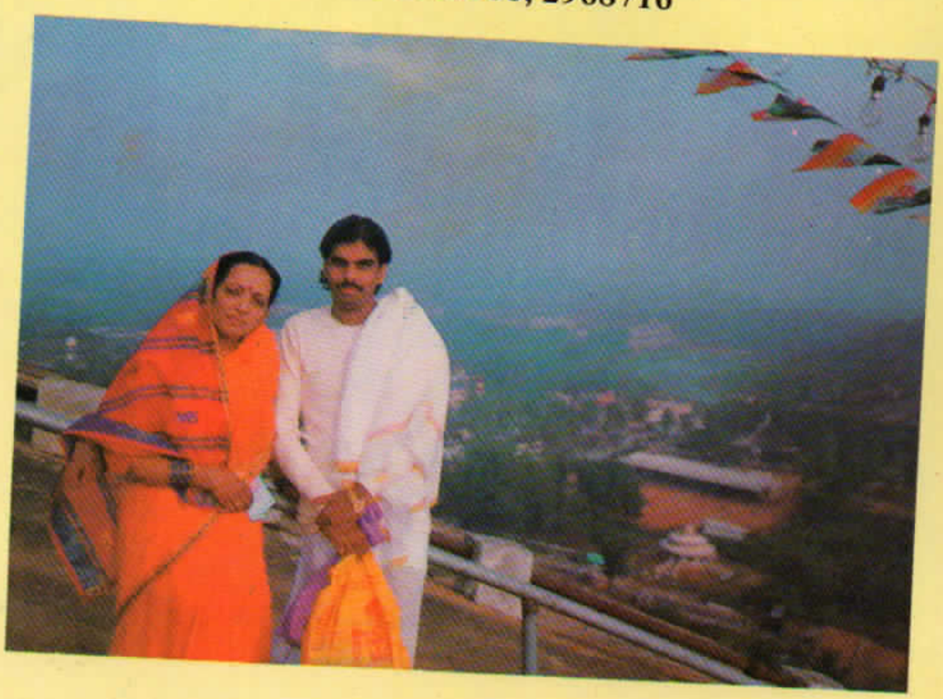

मुद्रक : शिवा आर्ट प्रेस एम-112 नवीन शाहदरा दिल्ली - 110032